Peer Reviewed / Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

Impact Factor - 3.855 (SJIF)

पँखुड़ी
Pankhuri

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

(BIANNUAL, BILINGUAL)

CHIEF EDITOR

Prof. Virendra Singh

Editor:

Dr. Kiran Garg

gargkiran101@gmail.com

www.pankhurijournal.in

09456481541, 09412106486

Contents

1. "A Comparative Study of E-banking Services in Private and Public Sector Banks, Assessing Its Impact On Customer Satisfaction" - Dhwani Gupta 01
2. Artificial Intelligence and Indian Higher Education
Saroj, Prof. Vijay Jaiswal 04
3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में तीर्थाटन, विरासत संरक्षण और समावेशी शिक्षा
डॉ० प्रेम सिंह सिकरवार, 07
4. वैश्विक सन्दर्भे वर्तमान भारतीय शिक्षा
भारती शर्मा, गवेषिका 10
5. कौटिल्य नीतियों की वर्तमान में प्रासंगिकता
डॉ० देवेन्द्र कुमार 13
6. भारतीय ज्ञान परम्परा तथा भारतीय नृत्य कला
अदिति सामन्त (अनुसन्धात्री) 16
7. संस्कृतवाङ्मये वेदांगेषु शिक्षायाः भूमिका
बिरंचीनारायणरथः 20
8. श्रीमद्भगवद्गीता में निहित मूल्यों की सार्थकता
डॉ० मनोज कुमार मीणा 22
9. विश्वनाथकविराज तं मम्मटकाव्यलक्षणखण्डनं स्वमतस्थापनम् च
पूनम कुमारी 27
10. 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम : एक पुनरावलोकन
डॉ० मुकेश पाल, रोहित कश्यप 30
11. Value Education : Need of the Hour
Prof. Vijay Jaiswal, Shilpi Agarwal 32
12. "A Comparative Study of Teaching Competency of Rural & Urban Secondary School Teachers of Meerut District of Uttar Pradesh" — Amit Jain 41
13. आयुर्वेदिक लोकोद्रियों से रोगों का समाधान
डॉ० संतोष गोडरा 44
14. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की अधिगम शैली का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ० जितेन्द्र सिंह गोयल, दीपांजली 47
15. बिहारी के काव्य में समाज का यथार्थ स्वरूप
डॉ० ओमवीर सिंह 52
16. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में राम काव्य
डॉ० शीतल 54
17. भारतीय मातृभाषा शिक्षण का महत्व
डॉ० ऊषा रानी मलिक 56
18. ऐतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से सुल्तानपुर
कंचन देवी, प्रो० नीतू वशिष्ठ 58
19. नवीन प्रवृत्तियाँ व लोक-कलाऐं
सतेन्द्र कुमार, प्रो० वन्दना वर्मा 61
20. मधु कांकरिया के उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में नारी विद्रोह का स्वर : धार्मिक मान्यताओं एवं आडम्बरों के संदर्भ में
सरिता पारीक 64
21. A Study of Personality and Career Aspiration in Relation with Academic Achievement of Secondary School Students - Dr. Vinita, Neetu Singh 67
22. महिला सशक्तीकरण एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
डॉ० लोमेश कुमार 71
23. A Comparative Study of the Attitude of Government Secondary School Teachers of Different Stream (Science & Art) Towards Teaching Profession - Dr. Kiran Garg, Dr. Preeti Sharma, Dr. Amit Kumar Sharma 73

पंखुड़ी Pankhuri INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Peer Reviewed/ Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित मूल्यों की सार्थकता

डॉ० मनोज कुमार मीणा
सहाचार्य, शिक्षापीठ
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय
संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–16

सारांशिका

प्रस्तुत पत्रक के अन्तर्गत मेरे द्वारा श्रीमदभगवद्गीता में निहित मूल्यों की सार्थकता को प्रस्तुत किया गया है कि समाज के सभी वर्गों के लिये गीता में निहित मूल्य कैसे उपयोगी तथा महत्वपूर्ण हैं तथा कैसे उनके द्वारा समाज को लाभान्वित किया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता जीवन के एक अंग के लिये महत्वपूर्ण नहीं हैं अपितु जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित कर उनमें अपना प्रभाव दिखाती है। इस विषय को अति संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करने का कार्य किया है।

अन्त में समाज के समस्त वर्गों के श्री मद्भगवद्गीता में निहित मूल्यों की सार्थकता पर बल दिया गया है जिससे समुदायों में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति नव चेतना रूपी जागृति का संचार किया जा सके, श्रीमद् भगवद्गीता में निहित मूल्यों की आधुनिक प्रासंगिकता क्या है इस बात को ध्यान में रखकर समस्त पक्षों पर बल दिया जा सके। इस पर विशेष ध्यान दिया गया है ।

मुख्य बिन्दु : श्रीमद्भगवद्गीता, मूल्य, सार्थकता, अनुभूति, संस्कृति।

प्रस्तावना

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह जो कुछ भी देखता–सुनता है ,उसी पर चिन्तन करने लगता है। चिन्तन करना, गहन स्तर पर विचार करना और सत्य को जानने का प्रयत्न करना ही मनुष्य की विशेषता है मात्र बुद्धि द्वारा चिन्तन के आधार पर ज्ञान, विज्ञान कला धर्म और संस्कृति की रचना की है, जो मानव–जाति की एक महत्त्वपूर्ण निधि के रूप में जानी जाती है।

भारतीय ऋषियों ने प्रकृति की गोद में बैठकर, प्राकृतिक सौन्दर्य से रसविभोर होकर, केवल बुद्धि के सहारे चिन्तन ही नहीं किया, बल्कि अपने भीतर की गहराई में जाकर और बुद्धि से परे जाकर, **शाश्वत सत्य की अनुभूति की, उसे अन्तरात्मा की आँखों से देखकर, प्रत्यक्ष दर्शन किया। इतना ही नहीं महापुरुषों ने बुद्धि के द्वारा तर्क और कल्पना के सहारे असंख्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण चिन्तन भी किया है, किन्तु वैदिक ऋषियों ने तो शरीर, इन्द्रिय,** मन और बुद्धि से परे जाकर किसी गहन स्तर पर सत्य की अनुभूति इस प्रकार की, जैसे उनको सत्य का जो साक्षात्कार वैदिक मंत्रों के रूप में परिलक्षित है।

श्रीमद्भगवद्गीता : संस्कृत साहित्य का अत्यंत लोकप्रिय महाकाव्य "श्रीमद्भगवद्गीता" महाभारत–संज्ञक उस "पंचम वेद" का एक उपदेशात्मक भाग है, जिसके विषय मे विद्वन्मड़ली में प्रसिद्ध है–"अनन्तवेद महाभारत में सारूप में प्रकट हैं और स्वयं महाभारत का सर्वस्व भगवद्गीता के सात सौ श्लोकों में निहित है"।

कुरुक्षेत्र में हुये महाभारत युद्ध के प्रारंभ में प्रयोजन–विशेष से किये गये प्रवचन "श्रीमद्भगवद्गीता" के उपदेशक स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। सृष्टि के आदि में उन्होंने इसका मूल रूप में उपदेश विवस्वान के प्रति किया था। तत्पश्चात् यह युग–युग में परम्परागत रीति से राजर्षियों को प्राप्त होता रहा। यह ज्ञान–विशेष द्वापर–युग में बहुत काल तक लुप्त रहा। इसको ही धर्म युद्ध से पराङमुख हुए किंकर्तव्य–विमूढ़ अर्जुन के प्रति पुनः उपदेश द्वारा योगबल से प्रकाश में लाने का कार्य षोडश–कला संपन्न अवतार–विशेष योगराज श्रीकृष्ण ने सुसंपन्न किया और जन–साधारण को परमतत्त्व की प्राप्ति कराने के लिए इसका यथासमय संपादन सत्साहित्य के निर्माण व संकलन के कारण व्यासोपाधि से विभूषित भगवान् नारायण के ही अंशावतार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने **किया। इस ईश्वरीय वाणी भगवद्गीता में वेद,** वेदांत और अन्य **विविध शास्त्रों के मंथन से उद्भूत पीयूष का** भारतम अंश निहित है।

"श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान और भक्ति के भवन को कर्म की नींव पर खड़ा किया गया है, कर्म की जो परिसमाप्ति है, उस ज्ञान में कर्म को ऊपर उठाकर रखा गया है तथा कर्म का वर्णन उस भक्ति के द्वारा किया गया है, जो कर्म की प्राण हैं और जहाँ से कर्म उद्भूत होते है" ।

श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश **विशेष के लिए नहीं है और न** उसनें अपना कोई पृथक सम्प्रदाय ही **स्थापित** किया है। उसकी संपूर्ण उपासना–पद्धतियों के साथ **सहानुभूति** है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म–भावना की व्याख्या करने के लिए यह ग्रंथ सर्वथा उपयुक्त है। वस्तुतः यह भारतीय तत्त्वज्ञान के इतिहास मे समय–समय पर हुए उन अनेक महान् समन्वयों में से एक है जिसमें विश्व धर्म की व्याख्या की गई है–मानव धर्म का विश्लेषण किया गया है।

मूल्य : मूल्य "जो होना चाहिए" **से संबंधित** एक विचार का नाम है। यह हमारे विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को प्रभावित करता है मूल्य का व्यक्ति के व्यक्तित्व और सामाजिक व्यवस्था से बहुत गहरा संबंध है। मूल्य जीवन के उद्देश्यों और उन्हें प्राप्त करने के साधनों को स्पष्ट करता है। हमारी सभी सामाजिक गतिविधियाँ मूल्यों से जुड़ी हुई हैं।

मूल्य हमेशा इस भावना से जुड़ा होता है कि समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्या है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि जो मानदंड समाज के लिए सर्वाधिक वांछनीय हैं, उन्हें मूल्य कहा जाता है।

जो हमें बताता है कि क्या सही है, क्या गलत है, क्या वांछनीय है, क्या अवांछनीय है, क्या अच्छा है, क्या बुरा है, उसे मूल्य कहते हैं। इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर हम समाज में आचरण करते हैं। मूल्यों की प्रकृति अमूर्त है, मूल्य ही समाज के आदर्श हैं।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में मूल्य : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के माध्यम से मानव के शैक्षिक एवं व्यावहारिक जीवन को सर्वश्रेष्ठ पथ प्रदर्शिका बनाना ही आलेख का प्रमुख उद्देश्य है। मानव के जीवन को निर्देशन परामर्श के शाश्वत मूल्यों से सार्थक बनाया जाये। यदि जिज्ञासा निष्क्रियता से जन्मी है, तो उससे समाधान निकल पाना भी संभव नहीं होगा क्योंकि ज्ञान का उद्देश्य क्रिया के लिए तथा क्रिया के मध्य होना ही अभीष्ट है। अर्जुन और श्रीकृष्ण ये दोनों पक्ष हमारे भीतर उपस्थित है, अथवा इन्हें उपस्थित कराके जिज्ञासा और शोध द्वारा समाधान प्राप्त करने की प्रक्रिया ही ज्ञान की पीठिका है। सच्ची जिज्ञासा पैदा करो, और फिर इसके समाधान के लिए सभी प्रकार का प्रयास करो, तभी विकास संभव होगा। प्रयोगात्मक ज्ञान ही गीता का विज्ञान है, क्योंकि यह व्यावहारिक प्रयोग की कसौटी पर खरा उतर चुका है। ज्ञान की कसौटी कर्म है, क्योंकि कर्म का स्वरूप ग्रहण करने पर ही ज्ञान शक्ति बन जाता है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान की युक्ति ही आनन्दवस्था की स्थिति है, जो गीता का लक्ष्य है।

शिक्षा एक उद्देश्य केन्द्रित प्रक्रिया है। शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। इससे वह समाज का एक उत्तरदायी घटक एवं राष्ट्र का प्रखर चरित्र सम्पन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वांगीण उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत–प्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुनस्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है। शिक्षा समाज की उन्नति के लिए भी एक आवश्यक शक्तिशाली साधन है। शिक्षा के द्वारा समाज आगामी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शों, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पत्ति को हस्तान्तरित करता है जिससे मानव जाति के हृदय में देश–प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्जवलित हो जाती है।

शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शिक्षण, अधिगम अध्यापन मूल्यांकन निर्देशन आदि निश्चित उद्देश्य होते है। शिक्षा मनुष्य के जीवन पर्यन्त चलने वाली सामाजिक प्रकिया है। व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों से प्रभावित होकर अनुकरण करता है। इस परस्पर व्यवहार के व्यवस्थापन पर ही सामाजिक सम्बन्ध निर्भर करते हैं। इस पारस्परिक व्यावहारिक सम्बन्धों में रूचियों, अभिवृत्तियों एवं आदतों आदि का विशेष महत्व है। इसके द्वारा कोई समाज अपने सदस्यों को अपनी संचित सभ्यता और संस्कृति से परिचित कराता है तथा निरन्तर विकास करने की शक्ति देता है। यदि शिक्षा की परिभाषा श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के शाश्वत मूल्यों के संदर्भ में दी जाये तो शिक्षा वह है जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित परमात्मा की अनुभूति कराने में सहायक होती है। शिक्षा का लक्ष्य मानव को उसे अज्ञान से मुक्त कराना है तथा प्रकाश की ओर ले जाकर सत्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरि करती है। "आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया ही शिक्षा है। अ शिक्षा का स्वरूप आध्यात्मिक है।"

भारत जैसे विकासशील एवं गौरवशाली संस्कृति, स्वाभिमान र स्वर्णिम अतीत से युक्त देश रहा तथा अपनी प्राचीनतम एवं श्रे संस्कृति का ऋणी हैं। जिसमें "सत्यमेव जयते" की परम्परा र अपनाया परन्तु सत्य को जानने का प्रयास लगातार करता र स्वतंत्र भारत में महात्मा गाँधी जी का भी ऋणी है। देश में गाँ जी का नाम आदर सम्मान के साथ लिया जाता है। समस्या समाधान के लिए भी विदेशी ज्ञान विज्ञान का आश्रय लेते हैं। शिक्षा में भी यही सब घटित हो रहा है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों (वे पुराण, उपनिषद, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, मानस, भागवत आदि) अनेक उच्च स्तरीय शैक्षिक सिद्धान्त विद्यमान है, किन्तु फिर हम पाश्चात्य शैक्षिक सिद्धान्तों को अपनाने की चेष्टा करते हैं। गीता में सर्व विदित है कि ईश्वर भक्तों की भूमि, कर्मयोगियों र कर्मभूमि, ज्ञानियों की ज्ञान भूमि, साहित्यिकों की रसिक भू सामाजिकों की वर्णाश्रय भूमि, माताओं की हृदय भूमि, शिष्यों र गुरुभूमि, वैज्ञानिकों की कौतुक भूमि, आरोग्य की आरोग्योपा भूमि, उद्विग्न की उद्वेगनाश भूमि, युयुत्सुओं की रागद्वेषहित्य भू सृष्टिवादियों की तत्वान्वेषा भूमि, मनोवैज्ञानिकों की चिकित्सार्मू शरणागतों की शरणागति भूमि, और दार्शनिकों की चिन्तन भू सब प्रकार सबकी जिज्ञासाओं को शान्त करने वाला ग्रन्थरा श्रीमद्‌भगवद्‌गीता है।" प्रसिद्धं हि गीताशास्त्रं समस्तवेदा सारसंग्रहभूतं युर्विश्रेयार्थम्।1।

इसी सन्दर्भ में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में निहित निर्देशन परामर्श शाश्वत मूल्यों की आवश्यकता वर्तमान जीवन के हर क्षेत्र परिलक्षित होती है क्योंकि व्यक्ति का जीवन इतना जटिल संघर्षमय है कि हम मनोवैज्ञानिक तनाव में जीवन व्यतीत कर र हैं। इसलिए प्रारम्भ से लेकर अन्त तक हमे किसी न किसी रु में निर्देशन व परामर्श की आवश्यकता पड़ती है। यदि निर्देश परामर्श के शाश्वत मूल्यों की सम्पूर्ण प्रक्रिया भारतीय परिस्थिति व सामाजिक वातावरण के अनुरूप होगी, तो उससे हम अधि लाभान्वित होगें। यह तभी सम्भव है जब गीता के शाश्वत मूल का हम निर्देशन व परामर्श प्रक्रिया को प्राचीन ग्रन्थों द्वा निर्देशित विधि से करें।

निर्देशन व परामर्श का वर्णन जितना श्रीमद्‌भगवद्‌गीता दृष्टिगोचर होता है। वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए आवश्यक इस बात की है कि परामर्श व निर्देशन के शाश्वत मूल्यों सम्मिलित किया जाय।

गीता ब्रह्मविद्यान्तर्गत योग शास्त्र है। इसमें नित्य शुद्ध र आत्मा के वर्णन के साथ श्री कृष्ण ने स्थित पक्ष का स्व निरूपण किया है। गीता एक ऐसा दर्शन है। जिसमे शा मूल्यों की मीमांसा का वर्णन है। जो बिना किसी कठिन क्रि और साधना के ग्रहस्थ धर्म में रहकर भी सामान्य रीति से दै कृत्यों करते हुए दर्शन के प्रयोजनमूलक पुरूषार्थ को सु कराता है। साथ ही मूल्यों के लौकिक व्यवहार का भी मार्गद कराता है। जबकि वेद, उपनिषद, न्याय वैशेषिकादि

पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ केवल विद्वानों के चर्चित चवर्ण के लिए हैं।

श्रीमदभगवद्गीता एक ऐसा ग्रन्थ है जो कर्म को महत्वपूर्ण मान्यता है। महाभारत के सामयिक विविध पक्षों का चित्रण अधिक मिलता है। उदाहरण हेतु दूरदर्शन पर महाभारत सीरियल देखा तो प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना पड़ा कि महाभारत के भीष्मपर्व को समझा जाये। श्री कृष्ण के उपदेश सुनकर ऐसा लगा जीवन का सिर्फ उददेश्य मुक्ति का मार्ग है। मात्र महाभारत ही नहीं अपितु रामायण, मनुस्मृति भागवत, वेद, उपनिषद, साहित्य आदि सभी ग्रन्थों में निर्देशन–परामर्श की अवधारणा का अंश मिलता है।

श्री मदभगवद्गीता एक ऐसा व्यावहारिक राजपथ है जिस पर आरूढ़ होकर सामान्य जन निरन्तर ऊपर उठते हुए, अध्यात्म के शिखर तक सहज रूप से पहुँच जाते है। कर्म की ऊर्जा, भक्ति की सरसता और ज्ञान की सात्विक स्थिरता उसमें एक बिन्दु पर स्थित है। इसीलिए गीता को विश्व का सर्वश्रेष्ठ व्यवहार शास्त्र कहा गया है। मनुष्य–हृदय में इस संघर्ष के उपस्थित होने पर मनुष्य जिस प्रकार अपना रथ सुनिश्चित करे, यही है गीता का पक्ष–प्रश्न जिज्ञासा मानव को उपलब्ध ज्ञान से आगे की दिशाओं की ओर अग्रसर करा सकेगीं।

श्रीमद्भवद्गीता में, अर्जुन मन का और श्री कृष्ण सात्विक बुद्धि का प्रतीक है। यदि मन, सात्विक एवं परिनिष्ठित बुद्धि अर्थात विवेक के निर्देशन में अपना कर्त्तव्यं कर्म अहंकार और कामना को त्यागकर (निष्काम होकर) करे तो मन का सारा संघर्ष और द्वन्द्व समाप्त होकर परम शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों (विशेषत गीता) में परामर्श निर्देशन व शिक्षण के स्वरूप का पठन करने के पश्चात् जब पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को पढ़ा गया तो मन में यह विचार स्वंतः ही उत्पन्न हुआ कि यही परामर्श निर्देशन व शिक्षण की प्रक्रिया तो इन प्राचीन ग्रन्थों में पहले से ही विद्यमान है तो ऐसी स्थिति में हमारे वातावरण, हमारी परिस्थितियों में उत्पन्न, परामर्श, निर्देशन व शिक्षण की विधियाँ ठीक रहेगी, न कि पाश्चात्य परिस्थितियों में उत्पन्न विधियॉं तथा शाश्वत् मूल्य। इस दृष्टि से देखा जाये तो श्री भगवद्गीता तो निर्देशन व परामर्श का एक अथाह कोष है। इसमें एक कुशल परामर्शदाता व निर्देशक की भाँति श्री कृष्ण ने अर्जुन को निर्देशन व परामर्श के साथ सम्पूर्ण जीवन की वास्तविकता सिखा दी अर्थात निष्काम कर्म करने पर बल दिया। वैसे भी जब कोई व्यक्ति मानसिक या सांवेगिक रूप से व्यथित होता है। तब उसे गीता ही पढ़ने को दी जाती हैं ताकि उसे पढ़कर उसका चित्त शान्त हो सके व कोई निर्णय लेने में सक्षम हो सके।

श्रीमदभगवद्गीता 18 अध्याय है, स्पष्ट है कि भगवद्गीता में निहित अधिविद्या और नीतिशास्त्र, हृदय विद्या और योगशास्त्र वास्तविकता (ब्रह्म) के साथ संयोग की कला दोनो ही है। आत्मा के सत्यों को केवल वे लोग ही पूरी तरह समझ सकते है। जो कठोर अनुशासन द्वारा उन्हें ग्रहण करने के लिए अपने आपको तैयार करते है। आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के विक्षेपों से रहित करना होगा और हृदय को सब प्रकार की चेष्टता से सम्बन्ध करना होगा। गीता में वैयक्तिक परमात्मा के रूप में भगवान पर बल दिया गया है। जो अपनी प्रकृति में ज्ञान अनुभव गम्य संसार का सृजन करता है। वह प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है। गीता में उपदेश (परामर्श) देने वाले कृष्ण को विष्णु के साथ जो कि सूर्य का प्राचीन देवता है और नारायण के साथ जो ब्रह्माण्डीय स्वरूप वाला प्राचीन देवता है और देवताओं और मनुष्यों का लक्ष्य या विश्राम– स्थान है, एकरूप कर दिया गया है।

प्रस्तुत आलेख के माध्यम से श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शाश्वत मूल्य जिनका निर्देशन, परामर्श व शिक्षण से है समझने का प्रयास किया गया हैं।

अध्ययन का केन्द्र मात्र श्रीमदभगवद्गीता को ही बनाया गया है ताकि इसमें विद्यमान निर्देशन, परामर्श व शिक्षण की विधियों को खोजा जा सके तथा ये ज्ञात किया जा सके कि श्रीमदभगवद्गीता में शाश्वत मूल्यों में निर्देशन परामर्श व शिक्षण की क्या विधियाँ है व क्या उसे हम आज भी परिस्थितयों में लागू कर सकते है।

श्रीमदभगवदगीता को स्रोत परम्परा का ग्रन्थ माना है। वेदों का सार उपनिषद है और गीता को समस्त वेदार्थ सार संग्रह कहा जाता है। इससे तात्पर्य है कि चारों वेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद का सार श्रीमदभगवद्गीता में निहित है। वैदिक परम्परा श्रीमदभगवद्गीता में सुरक्षित है। यह केवल गीता तक ही सीमित रहेगा। गीता में भी केवल निर्देशन, परामर्श, शाश्वत मूल्यों की शिक्षण प्रक्रिया से सम्बन्धित तथ्यों का ही अध्ययन किया जायेगा। विशेष रूप से उन्हीं टीकाओं की व्याख्या व विश्लेषण होगा, जिनमें श्रीमदभगवद्गीता में शाश्वत शैक्षिक मूल्यों की निर्देशन एवं परामर्श के सन्दर्भ में मीमांसा से संबंधित तथ्यों विधियों व सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है।

श्रीमदभगवद्गीता महाभारत का ही अंश है। यह महाभारत के भीष्म पर्व के तेइसवें अध्याय से बयालीस वे अध्याय पर्यन्त अठारह अध्यायों का महनीय भाग है। इसमें 700 श्लोकों का वर्णन है।

महाभारत में संभावित विनाश की आशंका से विषण अर्जुन के युद्ध से विरक्त होने की इच्छा को दूर कर उसे कर्म मार्ग में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से श्री कृष्ण ने जो उपदेश किया वहीं गीता का प्रतिपाद्य विषय है।

श्रीमदभगवद्गीता भारतीय विचारधारा को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला ग्रन्थ है। यह सर्व वेदमयी है, उपनिषदों के मूलभूत तत्वों को गूँथकर उन्हें एक नये ही रूप में प्रस्तुत करती है। गीता मानवमात्र के कल्याण के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थ है। मानव–जीवन की ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका समुचित समाधान (परामर्श) गीता में न सुझाया गया हो। संसार के घनघोर, विपत्ति, संकट, क्षोम, भय और निराशा आदि का समाधान गीता में निहित है।

गीता "सर्वभूत हितोरता" अर्थात् प्राणि मात्र के कल्याण का उदघोष करती है। गीता न केवल आध्यात्मिक साधकों का मार्गदर्शन करती है, बल्कि इस लोक में उत्तम जीवन जीने तथा सुख और शान्ति प्राप्त करने का मार्ग भी सुलझाती है।

परिवर्तनशील संसार में परमात्मा की दिव्य शक्ति सदैव प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य का सच्चा सहारा है। गीता में शाश्वत मूल्यों

की विशेषता है। यह प्रमुख दर्शन होते हुए भी काव्यात्मक है। गीता मात्र तत्व ज्ञान नहीं बल्कि व्यावहारिक दर्शन भी है।

गीता मानवता का संगीत है, श्री कृष्ण की वंशी ऐसे दिव्य संगीत का प्रतीक है, जो शिष्य अर्जुन को परमप्रिय है, अर्जुन पूर्णतया पहुँचने में प्रयत्नशील आत्मा का प्रतिनिधि है। गीता की वाणी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को नियन्त्रण में रखकर उन्हें सबल बनाने की विधि बताती है। गीता के शाश्वत मूल्यों ने अनेक भाषाओं के माध्यम से यात्रा करके विश्व के विद्वानों को प्रभावित किया है। गीता का प्रभाव बौद्धों के महायान ग्रन्थों में भी झलकता है। प्रकृति भी ईश्वर की एक शक्ति है, जिसके विकास के माध्यम से वह अपने को प्रकट करता है।

श्रीभगवद्गीता दर्शन की दृष्टि से अमूल्य ग्रन्थ है। क्योंकि इसे **सभी प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं एवं सिद्धांतों का समाहार मिलता है। भारतीय शिक्षा दर्शन भी समस्त सार गीता में निहित है। गीता में शिक्षा के दर्शन का क्षेत्र सार्वभौमिक है। यह प्रचलित हिन्दू धर्म का दार्शनिक आधार है। इसमें प्रत्येक मनुष्य के लिए उसका निर्दिष्ट विद्यमान है।**

भारतीय दर्शन में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है।

1. निवृत्ति मार्ग
2. प्रवृत्ति मार्ग

शिक्षा की दृष्टि से प्रवृत्ति मार्ग का महत्व अधिक है। श्रीभगवद्गीता में भी प्रवृत्तिमार्ग की विशेष रूप से व्याख्या की गयी है। अतः शिक्षा देने के लिए रणभूमि का चयन किया गया जहाँ प्रवृत्ति की प्रधानता है।

गीता दो प्रकार के ज्ञान का प्रतिपादन करती है–एक जो बुद्धि के द्वारा बाह्य जगत के अस्तित्व को समझाने का प्रयत्न करता है और दूसरा वह जो अन्तर्दृष्टि के द्वारा इन घटनाओं की श्रृंखला की पृष्ठभूमि में जो परम तत्व है उसे ग्रहण करता है। शिक्षा के **वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का सुदर विवेचन गीता में** मिलता है।

श्री भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उपबोध्य को केवल सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही सिखाना नहीं है, अपितु अन्तर्रात्मा की आवाज सुनने समझने एवं अनुसरण करने की योग्यता प्रदान करना भी है।

- श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्तित्व को सर्वांग सुन्दर बनाकर जीवन में सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् का बोध एवं समावेश करा देती है। श्रीमद्भगवद्गीता भगवान श्री कृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति है जो सब प्रकार से कल्याणकारी है। सर्वप्रथम शिक्षा को एक प्रक्रिया माना गया जिसमें जगदगुरु श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन की आन्तरिक शक्तियों का विकास किया।
- आधुनिक शिक्षण पद्धति के समान ही गीता में भी शिक्षण पद्धतियाँ, व्याख्यान, उपदेशात्मक, कर्मप्रधान्य आदि विद्यमान हैं।
- गीता में शिक्षण विधियों तीन प्रकार की है। ज्ञानयोग विधि, कर्मयोग विधि, भक्तियोग विधि। गीता में शिक्षण को विस्तृत अर्थ में लिया गया।
- गीता में जितना भी शिक्षण श्रीकृष्ण के माध्यम से हुआ वह उद्देश्यपूर्ण था क्योंकि श्रीकृष्ण का मुख्य उद्देश्य अपने शिष्य का कर्तव्य पथ पर अग्रसर करना था।
- गीता भारतीय विचारधारा को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला ग्रन्थ है। शिक्षा दर्शन की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता अमूल्य निधि है क्योंकि इसमें सभी प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का समाहार मिलता है।
- भारतीय शिक्षा दर्शन का समस्त सार गीता में विद्यमान है। गीता के शिक्षा दर्शन का क्षेत्र सार्वभौमिक है। शिक्षा के उददेश्यों, आदर्शों एवं मूल्यों का अत्यन्त विषद तथा सुंदर विवेचन गीता में किया गया है। गीता में शिक्षा जीवन भर चलने वाली उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।
- गीता का शिक्षा दर्शन किसी विशेष काल के लिए नहीं है अपितु यह तो सर्वकालिक अथवा सनातन है। जब–जब समाज में **विश्रृंखला उत्पन्न होती है तब तक समाज को उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में** अवतार धारण करना पड़ता है।
- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में श्रीमद्भगवद्गीता बहुत महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि इसमें सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहारिकता अधिक है जबकि वर्तमान शिक्षण पद्धति मे सिद्धान्तों की प्रमुखता है।
- आज की शिक्षण व्यवस्था में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यवस्तु का निर्माण छात्रों के मानसिक स्तरानुसार नहीं होता है, न ही उनकी योग्यता, अभिरूचि आदि के अनुसार हम शिक्षण विधियों को प्रयोग में लाते हैं। यही बात छात्र अध्यापकों के पाठ्यक्रम में भी लागू होती हैं वो शिक्षण–प्रशिक्षण के अन्तर्गत जो सीखते हैं व्यवहार में उसका प्रयोग नहीं कर पाते हैं। कारण शैक्षिक परिवेश तो भारतीय परिस्थितिनुसार होता है और प्रयोग करते हैं हम पाश्चात्य शिक्षण विधियों, और दोनों में ही सामन्जस्य न बैठा पा सकने के कारण उस शिक्षण का उतना प्रभाव नहीं दिखाई देता जितना कि होना चाहिए।
- आवश्यकता है कि हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों में, विशेष रूप से श्रीमद्भगवद्गीता में विद्यमान निर्देशन, परामर्श व शिक्षण की विधियों को खोजकर अपनाएं तो वह ज्यादा प्रभावशाली रहेगी।
- गीता में विद्यमान निर्देशन परामर्श व शिक्षण विधियाँ भी वर्तमान शिक्षा के सभी उद्देश्यों को पूरा करते हैं तो अपने वातावरण में उत्पन्न उन विधियों, प्रविधियों को और अधिक विकसित कर अपनाना ही श्रेष्ठ होगा।
- यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता से दार्शनिक चिन्तन और व्यापक जीवन अनुभव की जो विपुल सम्पदा हमको उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई है, श्रीमद्भगवद्गीता इस सम्पदा का जगमगाता हुआ दीप है जो हमारे वाह्य जगत को और अन्तःकरण को भी आलोकित करता है।

निष्कर्ष : इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षक छात्रों, **अभिभावकों तथा समस्त समाज को श्रीमद्भगवद्गीता में निहित** शाश्वत मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देनी चाहिए कि

Peer Reviewed/ Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

- गुरू का प्रथम दायित्व होता है कि वह चिकित्सक की भाँति शिष्य में आशा और उत्साह का संचार करें।
- सच्चा शिक्षक वही है जो छात्र को असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाये।
- शिक्षकों को चाहिए कि वो छात्रों के भविष्य निर्माण में अपनी भूमिका महत्वपूर्ण समझी।
- शिक्षकों को चाहिए कि वह अपने छात्रों की समस्त शंकाओं का समाधान करें।
- शिक्षक स्वयं नये–नये प्रयोग करके अपना ज्ञानवर्धन करते रहे।
- शिक्षक को स्वाध्याय करते रहना चाहिए।
- शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को उनके कर्त्तव्य, व्यक्तित्व एवं उनकी अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान कराये।
- माता–पिता बालक के प्रथम गुरू होते हैं अर्थात् उन्हें चाहिए कि ये बालकों में उच्च गुणों का समावेश करें।
- बालकों को आदर्श व्यवहार करना चाहिए।
- बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास का ध्यान रखे एवं उसकी उचित देखभाल करें।
- माता–पिता बालकों को स्कूल भेजे एवं समय–समय पर उनके कक्षाध्यापकों से मिलें एवं उनके बारे में पूछे कि वो पढ़ाई एवं व्यवहार में कैसे हैं।
- बालकों में उचित मूल्यों का विकास एवं उनकी आकांक्षाओं का मार्गदर्शन करें।
- विद्यार्थी कर्मशील बने एवं जीवन पथ पर निरन्तर आगे बढ़कर शाश्वत मूल्यों को समझे।
- विद्यार्थियों का चरित्र ऐसी धरोहर है विद्यार्थी के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करता है।
- विद्यार्थी सादा जीवन एवं उच्च विचार के पथ पर अग्रसर होकर अपने आपको समाज एवं देश को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं।
- एकता, सदाचार जैसे सनातन गुणों को व्यवहार में लायें।
- श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर गूढ़ तत्वों को समझाने का प्रयास करतें रहें ।
- विद्यार्थियों को चाहिए कि वो अपने आपको आत्मनिर्भर बनाये एवं अपना व समस्त जगत का कल्याण करें।

हम यह अपेक्षा करते हैं कि श्रीमदभगवदगीता में निहित शाश्वत मूल्यों से समस्त समाज अभिप्रेरित होगा और पुरातन एवं नवीन धारा के साथ मूल्यों का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जा सकेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. पाठक, डॉ. जगन्नाथ, 2000 ई., आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, उ.प्र. संस्कृत संस्थान प्रकाशन, लखनऊ।
2. द्विवेदी, डॉ. कपिल देव, 2004 ई., संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान प्रकाशन, वाराणसी।
3. उपाध्याय, डॉ. बलदेव, 1958 ई., भारतीय संस्कृत साहित्य का इतिहास, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. तोमर, लज्जाराम, शैक्षिक चिन्तन, 2019, विद्याभारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरूक्षेत्र, हरियाणा।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिन्दी संस्करण), भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. भारतीय उपनिषद, चौखम्बा संस्कृत संस्थान प्रकाशन, वाराणसी।
8. श्रीमद्भगवद्गीता, चौखम्बा संस्कृत संस्थान प्रकाशन, वाराणसी।
9. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर।

2019

International Research Journal of Management Sociology & Humanities

Vol 10 Issue 6

ISSN 2348 – 9359

IRJMSH

www.IRJMSH.COM

International Research Journal of Management Sociology & Humanities

ISSN 2348 – 9359 (Print)

A REFEREED JOURNAL OF

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education & Research Foundation Trust

www.IRJMSH.com
www.SPHERT.org

Published by iSaRa

Analysis of Customer Awareness and Satisfaction towards Self-service Providing Machines in SBI- With special reference to Ballari city 203

Jayalakshmi VA. -Dr.Chandramma M 203

मध्यकाल एवं वर्तमान भारत में शारीरिक शिक्षा 214

[illegible] 214

A DRIFT OF CLOUD TO FOG: NEW CHALLENGE IN COMPUTING 223

Dr. Pallavi Narang 223

British Indigo Industry and Gandhi's Champaran Satyagrah Movement 230

Vimlesh Narayan jha 230

मध्यकाल एवं वर्तमान भारत में शारीरिक शिक्षा

डॉ. मनोज कुमार मीणा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, षारीरिक षिक्षा, शिक्षाशास्त्र विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली 110016

प्रस्तावना–

शारीरिक शिक्षा शिक्षण प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ना–लिखना, ज्ञानार्जन करना, स्कूल जाना, पुस्तके पढ़ना आदि तक सीमित नहीं है। बल्कि इसका लक्ष्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से है। यह अधिगम की वह प्रक्रिया जो हमारे व्यवहार को विकासोन्मुख बनाती है। शिक्षा के बारे में कई महान विद्वानों ने अपने विचार इव प्रकार प्रकट किए हैं–

"शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली क्रिया है। यह जन्म से साथ आरम्भ होती है तथा मृत्युपर्यन्त तक चलती रहती है।" –डॉ. जाकिर हुसैन

"शिक्षा व्यक्ति की मानसिक शक्ति का विकास करती है जिसमें मस्तिष्क प्रमुख है, ताकि व्यक्ति की सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य के प्रति गहन सोच विकसित हो सके।"

–अरस्तु

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करने की एक सुनियोजित प्रक्रिया है, तथा समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों में अपने सामर्थ्य और शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करना सिखाती है जिस कारण व्यक्तिगत हित सार्वभौमिक हित में समाहित हो सके।

शारीरिक शिक्षा का अर्थ (Meaning of Physical Education)

शारीरिक शिक्षा दो शब्दों 'शारीरिक' तथा 'शिक्षा' के योग से बना है। शारीरिक का शब्दिक अर्थ है शरीर जिसका सीधा सम्बन्ध शारीरिक संरचना स्वास्थ्य, शक्ति, सहनशीलता, गति, फुर्ती और खेल के मैदान पर शारीरिक प्रदर्शन से है। यह अपने आप में शारीरिक विकास की दिशा में अद्वितीय योगदान कहा जा सकता है। शिक्षा के अर्थ से तात्पर्य सीखने की एक ऐसी अनवरत प्रक्रिया की समग्र विकास से है, जो व्यक्ति उसके सम्पूर्ण जीवन में कदम–कदम पर उपयोगी सिद्ध होती है। शारीरिक शिक्षा की शिक्षा छात्र की सीखने–सीखाने की प्रक्रिया में सहायक होती है। इन दोनों शब्दों का संयुक्त रूप से अर्थ शारीरिक गतिविधियों से अथवा गतिविधियों के कार्यक्रम से है, जो मानवीय शरीर के विकास व देखभाल शारीरिक शक्तियों के विकास तथा शारीरिक कौशलों के विकास के लिए आवश्यक है।

अधिकांश पाठ्यक्रम का निर्माण करने वाले शिक्षाविद शारीरिक शिक्षा के प्रसंग में शिक्षा के अर्थ को सही दृष्टिकोण से अभी तक भी भली–भाँति नहीं समझ पाये हैं। ये पाठ्यक्रम निर्माता शिक्षा को शैक्षिक विकास तक ही सीमित मानते हैं, जबकि शारीरिक शिक्षा के बिना सुव्यवस्थित शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार, शरीर को मस्तिष्क और मस्तिष्क को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार शारीरिक शिक्षा को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता।

शिक्षा के साथ शारीरिक शब्द जुड़ जाने से शिक्षा की प्रक्रिया में पूर्णता आती है। इसका उद्देश्य व्यापक तौर पर शारीरिक क्रिया–कलाप (व्यायाम) के माध्यम से व्यक्ति को सुशिक्षित बनाना है। इससे व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता में निखार आता है और उसके फलस्वरूप व्यक्ति का समग्र विकास होता है। इस प्रकार शारीरिक एवं बौद्धिक संतुलन होने पर व्यक्ति शारीरिक रूप से चुस्त, मानसिक रूप से सजग, भावनात्मक रूप से संतुलित सामाजिक रूप से सामंजस्य युक्त, नैतिक रूप से सत्यनिष्ठ और आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता है। यह सब होने के साथ–साथ जब हम यथार्थ जीवन से जुड़ते हैं तो शारीरिक शिक्षा व्यक्ति के जीवन में आने वाली दिन–प्रतिदिन की परिस्थितियों से सम्बन्धित व्यवहारिक पक्ष से जुड़े सभी अनुभवों के प्रति अपना अमूल्य योगदान देती है। यह किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन में आने वाली किसी भी अज्ञात परिस्थिति का सामना करने योग्य बनाती है। शारीरिक शिक्षा तन और मन दोनों के विकास में सहायक होती है इसीलिए वर्तमान समय में समूचे विश्व में शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर शारीरिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा का एक अभिन्न अंग माना गया है।

शारीरिक शिक्षा को एक ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें शारीरिक गतिविधि दक्षता और प्रासंगिक ज्ञान की सहायता से किसी व्यक्ति के स्वभाव में एक निश्चित प्रभाव हासिल करने के लिए उसे एक सुखद, मनोरंजक और फलदायी जीवनशैली अपनाने को प्रेरित किया जाता है। दूसरे शब्दों में शारीरिक शिक्षा, शिक्षा का वह हिस्सा है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य के सभी अवयवों में सुधार करके उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करती है। एक व्यक्ति को नियमित शारीरिक गतिविधियों में सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए शारीरिक शिक्षा एक जीवनपर्यन्त चलने वाली गतिमान प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति में पर्याप्त शारीरिक स्वस्थता, भावनात्मक नियंत्रण और खेल व व्यायाम के प्रति सम्यक सहभागिता बनी रहती है। इस प्रकार, शारीरिक शिक्षा बेहतर स्वास्थ्य योग्य अवकाश समय की गतिविधियों के लिए एक व्यक्ति की जीवनशैली में बदलाव लाती है और स्वास्थ्य और कुशलता के प्रति उसमें

मनोजमीणा

IRJMSH Vol 10 Issue 6 [Year 2019] ISSN 2277 – 9809 (Online) 2348–9359 (Print)

जागरूकता उत्पन्न कर एक उपयोगी नागरिक बनाने में समर्थ बनाती है जिसमें नैतिक चरित्र, बेहतर मानव सम्बन्ध और आर्थिक रूप से अधिक क्षमता निहित है।

शारीरिक शिक्षा की परिभाषाएँ (Definitions of Physical Education)

शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसी कोई एक परिभाषा प्रस्तुत करना संभव नहीं है, जिसे विश्व में सबके द्वारा स्वीकृत किजा जा सके। शारीरिक शिक्षा के विषय में विभिन्न शारीरिक शिक्षा शास्त्रियों के विचार इस प्रकार है :

1. "शारीरिक शिक्षा, सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा है इसका उद्देश्य शारीरिक, मानसिक,भावात्मक तथा सामाजिक रूप से स्वस्थ नागरिकों का निर्माण करना है तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ऐसी गतिविधियों का चयन करना है जिनके द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।"

   –चार्ल्स ए. बूचर

   "Physical Education is an integral part of total education process and has its aims the development of physically, mentally emotionally and socially fit citizen through the medium of physical activities which have been selected with a view to realising these outcomes."

   - Charles A. Bucher

2. "शारीरिक शिक्षा उन सभी अनुभवों का जोड़ है जो व्यक्ति में गतिविधियों के द्वारा आते हैं।"

   "Physical Education is the sum of those experiences which come to the individual through movement."

   - Delbert Oberteuffer

3. "शारीरिक शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जिसमें शारीरिक क्रियाओं के द्वारा बालक के समग्र व्यक्तित्व का विकास तथा उसके तन, मन और आत्मा को पूर्णतः सम्पन्न बनाया जा सके।"

   –जे.पी. थामस

मध्यकालीन भारत में शारीरिक शिक्षा (Physical Education in India During Medieval Period)

मध्यकालीन भारत में शारीरिक शिक्षा को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :–

1. नालन्दा काल (Nalanda Period)
2. राजपूत काल (Rajput Period)
3. मुस्लिम काल (Muslim Period)
4. मराठा काल (Maratha Period)

1. नालन्दा काल (Nalanda Period)

भारत वर्ष में पुराण काल के उत्तरार्ध काल में कई चीनी यात्री आए। उनके लेखों से इसी काल की जानकारी मिलती है। नालन्दा जो पटना के नजदीक ही था सिखलाई का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता था। चीनी यात्रियों के नालन्दा विश्व विद्यालय में खेलों तथा प्रतियोगिताओं का वर्णन मिलता है।

इस काल में दूसरा महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र तक्षशिला था। तक्षशिला में एक सैनिक प्रशिक्षण संस्था थी, जिसका विशेष विषय धनुर्विद्या था। इस विश्वविद्यालय में दूर–दूर से लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। इस काल में राजा लोग अपने पास अच्छे–अच्छे मल्ल रखते थे तथा उनके कौशल्य का प्रदर्शन किया जाता था। नालन्दा काल में निम्नलिखित खेल तथा उनकी प्रतियोगिताएं होती थीं।

1. तैरना
2. गेंद के खेल
3. भूमि पर अंकित चित्रों पर कूदना
4. तीर–अंदाजी प्रतियोगिता
5. बाजा बजाना
6. गोली के खेल
7. रथ चलाना
8. हल चलाने की प्रतियोगिता
9. खड्ग–युद्ध
10. जोड़ी व्यायाम
11. मल्ल खम्ब व्यायाम
12. घोड़े तथा रथ के आगे दौड़ना
13. मल्ल–युद्ध
14. कलाई पकड़ना
15. गदा चलाना
16. भाला चलाना
17. हाथी युद्ध
18. भार उठाना

2. राजपूत काल (Rajput Period)

इस काल में राजपूत छोटी–छोटी बातों पर ही लड़ाई कर लेते थे। वे लोग सैंकड़ों कबीलों में बंटे हुए थे। राजपूत शारीरिक–शिक्षा पर पूरा–पूरा ध्यान देते थे। राजपूतों के अनुसार शारीरिक क्रियाएं शारीरिक समस्याओं के समाधान के लिए बहुत ही जरूरी है।

इस काल में लड़कियों को घुड़–सवारी की शिक्षा विना काठी के घोड़ों पर दी जाती थी। इस काल में निम्नलिखित खेल तथा प्रतियोगिताएं प्रचलित थीं।

1. तलवार की सिखलाई
2. कटार की सिखलाई
3. घुड़–सवारी
4. नृत्य
5. संगीत
6. नेजाबाजी
7. धनुर्विद्या
8. कुश्ती
9. शिकार करने के तरीके
10. शतरंज।

3. मुस्लिम काल (Muslim Period)

मुस्लिम काल युद्ध और लड़ाईयों के बीच में ही अपना समय काट गया। इस काल में भारतीय समाज अनेक कारणों से कमजोर हो चुका था। भारत वर्ष छोटे–छोटे राज्यों में बंटा हुआ था, अतः मुस्लिम राजाओं को लगातार युद्ध करने पड़ते थे। इसलिए इस काल में भारतवासी विशेष शिक्षा अथवा शारीरिक शिक्षा नहीं पा सके। कुछ ब्राह्मण लोग प्राचीन प्रणाली को लेकर मन्दिरों में विद्यालय चलाया करते थे। इसी प्रकार मुस्लिम छात्रों के लिए मस्जिदों में मदरसे हुआ करते थे।

इन संस्थाओं में बच्चों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। विशेष प्रकार की राज्य प्रणाली तथा लगातार युद्ध होने के कारण राजाओं को बड़ी–बड़ी सेनाएं रखनी पड़ती थी। इन सेनाओं को उस समय प्रचलित शस्त्रों के प्रयोग की शिक्षा दी जाती थी।

मुगलकाल में भारतवर्ष में मुसलमानों का स्थिर राज्य स्थापित हुआ। इस काल में राजाओं तथा सरदारों के लिए मनोरंजन के कुछ खेल खेले जाते थे। अकबर पोलो का बड़ा प्रेमी था। सूत के धागे से बनी गेंद से पोलो खेला जाता था। अकबर रानी निवास में ही रानियों के साथ पोलो खेला करता था।

जहांगीर को आखेट का बड़ा शौक था। अकबर के समय खड़ग–युद्ध तथा पहलवानों पर बड़ा ध्यान दिया जाता था। पहलवान मोहम्मद कुली को सम्राट की ओर से ''शेरे हमला'' की उपाधि दी गई थी। इसके अतिरिक्त तुर्किस्तान से पुराने तथा एबेसीनिया से हिलाल नामक पहलवान प्रसिद्ध थे। भारत के पहलवानों में साधू दयाल, श्री राम, गणेश, अम्बा कन्हैया, बलभद्र, नानक तथा बैजनाथ प्रसिद्ध थे।

IRJMSH Vol 10 Issue 6 [Year 2019] ISSN 2277 – 9809 (Online) 2348–9359 (Print)

मस्लिमकाल में भी चौगान का वर्णन मिलता है। मुगलवंश के पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन एबक की मृत्यु ईस्वी सन् 1210 में चौगान खेलते समय घोड़े से गिरकर हुई थी।

प्रसिद्ध सूफी सन्त तथा अमीर खुसरो ने फारसी में ''नूह सिपिहर'' नामक ग्रंथ (1253–1325) फारसी में लिखा था जिसमें आठवां अध्याय चौगान खेल पर आश्रित है। इससे मालूम होता है कि दिल्ली के सुल्तान चौगान प्रेमी थे। तुर्की के अलावा राजपूत तथा अफगान भी चौगान में रूचि लेते थे।

बाबर से लेकर औरंगजेब तक सभी महान सम्राट चौगान खेल के प्रेमी थे। राजा अकबर ने अपने समय में रात्रिकालीन चौगान भी शुरू किया था। रात्रिकालीन चौगान में जलती गेंद का प्रयोग होता था।

अपने सभी दरबारियों के लिए अकबर ने चौगान खेल के समय में अनिवार्य उपस्थिति का नियम भी बनाया था।

मुस्लिम काल की कुछ प्रसिद्ध क्रियाएं निम्नलिखित थीं।

1. कुश्ती
2. मुक्केबाजी
3. कबूतर बाजी
4. शिकार
5. तैराकी
6. शतरंज
7. चौपट
8. पचीसी
9. जानवर लड़ाई
10. पोलो
11. तलवार–बाजी
12. चौगान

4. मराठा काल (Maratha Period)

मुगल साम्राज्य के अन्तिम समय में शासन की ओर से कुछ ऐसी धार्मिक नीति अपनाई गई जिससे जनता में क्रोध तथा निराशा की भावना पैदा हुई और मुगल साम्राज्य को समाप्त करने के प्रयास शुरू हो गए। उस काल में राजस्थान के राजपूतों ने, मथुरा में जाटों ने, पंजाब में गुरू गोबिन्द सिंह के अनुयाईयों ने तथा महाराष्ट्र में मराठों ने प्रत्यक्ष तौर पर मुगल साम्राज्य का विरोध शुरू कर दिया।

समर्थ गुरू रामदास ने उपरोक्त राजनैतिक भावना को लेकर हिन्दू समाज को बलशाली तथा संगठित करने के लिए व्यायाम शालाओं की एक श्रृंखला का

संगठन किया। इन व्यायाम शालाओं में श्री हनुमान जी की मूर्तियां स्थापित की गई तथा सुबह और शाम को नवयुवकों को इकट्ठा करके मल्ल युद्ध, सूर्य नमस्कार दण्ड बैठक, खड्ग तथा अन्य शास्त्रों का अभ्यास कराया जाने लगा। समर्थ गुरू रामदास ने मुगल साम्राज्य को नष्ट करने के उद्देश्य से भारतीय समाज के राजनैतिक नेतृत्व के लिए शिवाजी को तैयार किया। गुरू रामदास द्वारा स्थापित व्यायाम शालाओं में कुछ व्यायाम शालाएं आज तक कार्य कर रही हैं।

पेशवाओं को भी इस काल में उपरोक्त व्यायाम शालाओं से प्रोत्साहन मिलता रहा। पेशवा अधिकतर सूर्य नमस्कार ही करते थे। बाजीराव द्वितीय ने अपनी व्यायाम शाला में गुरू वल्लभ भट्ट दादा देवधर को शिक्षक के रूप में रखा था। श्री देवधर इस काल के प्रसिद्ध मल्ल थे। उन्होंने बनारस तथा महाराष्ट्र में अपनी व्यायाम शालाएं खोली, जिनमें से कुछ व्यायाम शालाएं आज भी चल रही हैं।

युद्ध कला के प्रशिक्षण के साथ–साथ वर्ष में एक बार मराठा सेनाओं की क्रीडा उत्सव भी मनाया जाता था। श्री वाटन ने लिखा है कि लोग व्यायाम के इतने प्रेमी थे, कि कई बार स्त्रियां भी अपने शरीर को इतना शक्तिशाली बना लेती थी कि वे पुरुषों को कुश्ती के लिए आमंत्रित करती थीं। लेकिन हार के अपमान के डर से पुरुष इस आमंत्रण को स्वीकार नहीं करते थे। इस काल में निम्नलिखित व्यायामों तथा क्रियाओं को किया जाता था।

1. मल्ल–युद्ध
2. दण्ड–बैठक
3. सूर्य–नमस्कार
4. तलवार–बाजी
5. मुगदर
6. लेजिम
7. नृत्य
8. संगीत।

वर्तमान भारत में षारीरिक षिक्षा–

मध्यकालीन भारत में जो ष्शारीरिक षिक्षा के जो केन्द्र थे उन पर ष्शासक या राजाओं का अधिकार था और उस समय प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन केन्द्रों पर जाकर षारीरिक षिक्षा को प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं होता था। केवल ष्शासक या राजाओं के परिवार के सदस्य या उनके खास व्यक्तियों की ही पहुच इन केन्द्रों तक सीमित थी परन्तु वर्तमान समय में स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति के लिए ष्शारीरिक षिक्षा को प्राप्त करना आसान काम हो गया है। आज प्रत्येक छात्र को विद्यालयी स्तर पर एवं विष्वविद्यालय स्तर पर षारीरिक षिक्षा प्रदान की जाती है। वर्तमान समय में षिक्षा के साथ–साथ षारीरिक षिक्षा भी प्रदान करना आवष्यक हो गया है। क्योंकि षारीरिक षिक्षा बालकों के सामान्य विकास में भी सहायक होती है। आज विद्यालयी एवं विष्वविद्यालय स्तर पर एवं अन्य खेल अकादमियों के द्वारा अनेक षारीरिक षिक्षा से सम्बन्धित गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **मुख्य खेल (Main Games)** : मुख्य खेलों में क्रिकेट, हॉकी, बालीवॉल, कबड्डी, बॉस्केट बॉल, तैराकी, एथलेटिक्स, लॉन टेनिस, टेबल टेनिस, फुटबॉल, बैडमिंटन आदि शामिल हैं।
2. **मनोरंजनात्मक खेल (Recreational Games)** : इन खेलों में शटल–दौड़, शेर–बकरी, आलू–दौड़, लंगड़ी–दौड़, बोरी–दौड़, टैग–दौड़, मेंढक–कूद आदि छोटे–छोटे खेल शामिल हैं।
3. **द्वंदात्मक गतिविधियाँ (Combative Activities)** : इनमें मुक्केबाजी, ताइक्वांडों, जूडो–कराटे आदि शामिल हैं।
4. **लयात्मक गतिविधियाँ (Rhythmic Activities)** : इन क्रियाओं में लयात्मक जिम्नास्टिक, लोकनृत्य, मास पी.टी. समूह नृत्य, एकल नृत्य, लेजियम, डम्बल, मार्चिंग आदि शामिल हैं।
5. **सृजनात्मक गतिविधियाँ (Creative Activities)** : सृजनात्मक क्रियाओं में ड्राइंग, पेंटिंग, पेपर कटिंग, मूर्तिकला एवं गार्डनिंग शामिल है।
6. **क्विज प्रतियोगिताएँ (Quiz Competition)** : इसमें छात्रों की रूचि के अनुसार खेलकूद से सम्बन्धित क्विज प्रतियोगिताएँ शामिल की जा सकती हैं।

सारांश :–

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि चाहे मध्यकालीन भारत में प्रचलित शारीरिक शिक्षा हो या वर्तमान कालीन प्रचलित शारीरिक शिक्षा हो दोनों ही मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार मस्तिष्क एवं शरीर को अलग नहीं किया जा सकता। शरीर के बिना मस्तिष्क को शिक्षित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार मस्तिष्क के बिना शरीर को प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता है। शारीरिक गतिविधियां ही जीवन का आधार है। और इसके द्वारा हमारी वृद्धि एवं विकास संभव है। शारीरिक क्रियाओं से हमारी क्षमता कढ़ती है। और बहुत से रोगों से बचाव हो जाता है।

वर्तमान तकनीकी युग के कारण लोगों की जीवनशैली में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। औद्योगिक क्रांति के कारण हमें शारीरिक श्रम से बचने के कई साधन प्राप्त हो गये हैं जिससे हमारे शरीर का पर्याप्त मात्रा में व्यायाम नहीं हो पाता है। जनसंख्या में वृद्धि और खेल के मैदानों की कमी से यह समस्या और भी जटिल हो गई है। दैनिक जीवन में शारीरिक क्रियाओं की कमी के कारण

स्वास्थ्य सम्बंधी अनेक विकार एवं रोग उत्पन्न हो रहे हैं। यदि हम वर्तमान युग में स्वयं को स्वस्थ्य रखना चाहते हैं तो हमें दैनिक जीवन में स्वयं को शारीरिक गतिविधियों में संलिप्त रखना पड़ेगा ताकि हमारे शरीर के आवश्यक अंगों का रोजाना व्यायाम हो और हम स्वास्थ्य सम्बंधी अनेक समस्याओं और रोगों से बच सकें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. खत्री, डॉ. एच.एल. (2017) स्वास्थ्य, योग एवं शारीरिक शिक्षा के मूलभूत आधार, पैरागॉन इण्टरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. कंवर, डॉ. रमेश चन्द (2005) शारीरिक शिक्षा के सिद्धान्त एवं इतिहास, अमित ब्रदर्श पब्लिकेशन्स, नागपुर।
3. भण्डारी, डॉ. दीपक सिंह (2015) शारीरिक शिक्षा सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. बालायण, सुनील (2007) शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद में संगठन एवं प्रशासन।
5. शर्मा, डॉ. रमा, शारीरिक शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, उ.प्र.।
6. सिंह, डॉ. आर.पी. कुमार, योगेश, कुमार, सुनील, शारीरिक शिक्षा (2012) खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

Journal of Interdisciplinary Cycle Research ISSN:0022-1945 (IMPACT FACTOR-6.2) An UGC-CARE Approved Group – II Journal (Scopus Indexed Till 1993)

Download UGC-CARE Group 'II' Journals List:UGC-CARE Group 'II' Journals list - Serial Number. 21259 Submit paper Email id: submitjicrjournal@gmail.com

CALL FOR PAPERS

We welcome big achievers, professors, research scholars to contribute their original works in forms of case studies, empirical studies, meta-analysis and theoretical articles and illuminate the pages with their universal ideas and fresh perspectives to make the journal synonymous to the entire research field.

Science,Engineering and Technology

- Aeronautical and Aerospace Engineering
- Agricultural Engineering
- Applied Chemistry
- Applied physics
- Architecture and Construction
- Artificial Intelligence
- Automobile Engineering
- Biotechnology
- Ceramic Technology

भारतीय शिक्षा में योग दर्शन की उपयोगिता

डा. मनोज कुमार मीना,

सहायक आचार्य, शिक्षासंकाय,

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय-

संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-16

शोधसार-

शिक्षा किसी न किसी रूप में एक शिशु का सर्वांगीण विकास करके उसको अपने जीवन में विभिन्न कर्तव्य व उत्तरदायित्वों को निर्वाह करने के लिए पूरण रूप से तैयार करती है। शिक्षा व्यक्तित्व का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं संवेगात्मक विकास करती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति सभी समस्याओं का समाधान करने के लिए योग्यता धारण करता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल जाता है, उसी प्रकार पशु समान मानव भी शिक्षा के प्रकाश से अपने भविष्य को उज्वल तथा प्रकाशमय बनाता है। जिसके पश्चात् उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली रहती है।

शिक्षा एक ओर व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है जिससे व्यक्ति की उन्नति तथा प्रगती होती है। वहीं दूसरी तरफ उसे समाज का महत्वपूर्ण नागरिक बनाकर देश प्रेम की भावना उसमें पैदा करती है। शिक्षा के द्वारा प्राचीन परम्पराओं और संस्कृतियों का हस्तानान्तण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में करती है। शिक्षा बालक के हृदय में देश प्रेम बलिदान व निहित स्वार्थों की त्याग की भावना को जाग्रत करती है, शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक भूमिका निभाती है।

योगशास्त्र योग का अध्ययन है। तो फिर योग का क्या तात्पर्य होता है। योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि के अनुसार 'योगश्चित्तवृत्तिनरोधः' (योगसूत्र 1.2) चित्तवृत्ति का निरोध योग है। भगवद्गीता में 'दुःखसुखसंयोगवियोगं योगसंश्तिम्' (6.23) अर्थात् सख-दुःख का संयोग-वियोग या सुख-दुःख के होने पर भी उससे वियोग की स्थिति को योग कहा जाता है। अन्यत्र भी कृष्ण भगवान का शब्द है - 'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् सम्भावना ही योग कहा जाता है। इस

मनोज मीना

शोधपत्र में भारतीय शिक्षा में योग दर्शन की उपयोगिता के अन्तर्गत योग सूत्र, योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के सिद्धान्त, योग दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य, योग दर्शन में अध्यापक की भूमिका, योगदर्शन में विद्यार्थी का व्यक्तित्व, पाठ्यचर्या, शिक्षणविधि, विद्यालय और अनुशासन के बारे में विस्तार से प्रस्तुत किया जाएगा।

भूमिका-

शिक्षा किसी न किसी रूप में एक शिशु का सर्वांगीण विकास करके उसको अपने जीवन में विभिन्न कर्तव्य व उत्तरदायित्वों को निर्वाह करने के लिए पूरण रूप से तैयार करती है। शिक्षा व्यक्तित्व का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं संवेगात्मक विकास करती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति सभी समस्याओं का समाधान करने के लिए योग्यता धारण करता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल जाता है, उसी प्रकार पशु समान मानव भी शिक्षा के प्रकाश से अपने भविष्य को उज्ज्वल तथा प्रकाशमय बनाता है। जिसके पश्चात् उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली रहती है। शिक्षा एक ओर व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है जिससे व्यक्ति की उन्नति तथा प्रगती होती है। वहीं दूसरी तरफ उसे समाज का महत्वपूर्ण नागरिक बनाकर देश प्रेम की भावना उसमें पैदा करती है। शिक्षा के द्वारा प्राचीन परम्पराओं और संस्कृतियों का हस्तानान्तण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में करती है। शिक्षा बालक के हृदय में देश प्रेम बलिदान व निहित स्वार्थों की त्याग की भावना को जाग्रत करती है, शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक भूमिका निभाती है। निश्चय ही शिक्षा सतत् रूप से चलने वाली एक ऐसी गत्यात्मक प्रक्रिया है जो मानव को अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभाने में सक्षम बनाती है एवं राष्ट्र के विकास में सहयोग प्रदान करती है।

योगशास्त्र योग का अध्ययन है। तो फिर योग का क्या तात्पर्य होता है। योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि के अनुसार 'योगश्चित्तवृत्तिनरोधः' (योगसूत्र 1.2) चित्तवृत्ति का निरोध योग है। भगवद्गीता में 'दुःखसुखसंयोगवियोगं योगसंश्तिम्' (6.23) अर्थात् सख-दुःख का संयोग-वियोग या सुख-दुःख के होने पर भी उससे वियोग की स्थिति को योग कहा जाता है। अन्यत्र भी कृष्ण भगवान का शब्द है - 'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् सम्भावना ही योग कहा जाता है। गीता की दोनों उक्तियों से स्पष्ट है कि योग आत्मा की स्थिति 'चित्तवृत्ति निरोध' 'सम्भाव' है। इसका स्पष्टीकरण योग भाष्यकार के शब्दों से होता है - 'योगः समाधिः' अर्थात् जिससे चित्त अच्छी तरह स्थान ले वह योग है।

योग दर्शन का आधार ग्रन्थ - योगसूत्र

क्रं.सं.	पाद नाम	प्रथम सूत्र	अन्तिम सूत्र	कुल सूत्र
1	समाधि पाद	अथ योगानुशासनम्	तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधि	51
2	साधनपाद	तपः स्वाध्यायेस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः	ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्	55
3	विभूति पाद	देशबन्धश्चित्तस्यधारणा	सत्वपुरूषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्	55
4	कैवल्यपाद	जन्मैषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः	पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं स्वरूपपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति	34
			कुल सूत्र	195

योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के सिद्धान्त-

1. चित्त वृत्ति निरोध - मनुष्य की प्रकृति विवेचन में चित्त एक अंग के रूप में मिलता है। चित्त और उसकी शक्ति (चेतना, वृद्धि और ज्ञेयता) प्रकृति (जड़ वस्तओं) की ओर प्रवृत्त होते हैं।

2. योग मनोविज्ञान को आधार मानता है - चित्त, वृत्ति, निरोध इनका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहारों या क्रियाओं या चैतन्य प्रकाशन का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करता है तथा व्यक्तित्व के समझने में सहायता देता है।

3. चित्त, वृत्ति और क्लेश का विवरम - चित्त मानव की आत्मा की एक विशेषता है जो समस्त प्राकृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होकर तद्रूप हो जाता है। इनका विवरण योग दर्शन में अच्छी तरह दिया गया है।

4. योग एवं उसके अंग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अंग है।

5. आठ सिद्धियाँ - योगाभ्यास के कारण पुरूष को आठ प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है। अणिमा या सूक्ष्म स्वरूप होना, लंघिमा या हल्का होना, शक्ति का अबाधित होना, वशित्व या वाश में करना, अधिकार जमाना यत्रकमवासित्व या सम्पूरण संकल्पों की प्राप्ति। जीवन में ये सिद्धियां आध्यात्मिक एवं सांसारिक सफलता के साधन हैं।

6. ईश्वर प्रणिधान - सांख्य एवं योग दोनों दर्शनों में ईश्वर का संकेत है परन्तु इन दोनों में ईश्वर 'पुरूष' या 'पुरूष विशेष' है।

7. कैवल्य और आत्म दर्शन - योग दर्शन के अनुसार "साधक को चित्त वृत्ति निरोध के लिये अभ्यास और वैराग्य का अभ्यास करना जरूरी है।"

8. आत्मा चित्त से भिन्न - चित्त से आत्मा योग दर्शन में भिन्न मानी गयी।

9. कर्मवाद या कर्म मीमांसा - योग की विचारधारा में कर्मवाद पाया जाता है। जन्म क्रिया का साक्षात् सम्बन्ध कर्म से है। कर्म चार प्रकार के हैं। कृष्ण, शुक्ल, कृष्ण-शुक्ल, अशुक्ल-अकृष्ण।

10. योगदर्शन के चार व्यूह - (या व्यूहपाद) - योगदर्शन को आन्तरिक 'मल' को साफ करने वाला कहा गया है। दूसरे शब्दों में यह दर्शन आध्यात्मिक चिकित्सा शास्त्र है। चिकित्सा शास्त्र में 4 व्यूह होते है - रोग, रोग हेतु, आरोग्य, औषधि।

11. नैतिक जीवन की ओर ले जाने वाला योग - योग चित्त वृत्ति का निरोध होने से नैतिक जीवन के लिये संयम प्रदान करता है।

12. योग व दर्शन का लक्ष्य सिद्धान्त और व्यवहार का अद्वितीय मेल - दर्शन अन्तिम सत्य के खोज की प्रणाली है। योग दर्शन भी इसी खोज की एक प्रणाली है।

13. सत्य प्रज्ञावाद - योग दर्शन में प्रज्ञा (ज्ञान) पर बल दिया गया है। विवेक ख्याति सम्पन्न योगी में एक प्रज्ञा होती है जिसे प्रान्तभूमि प्रज्ञा कहते है।

14. दुःखवाद का सिद्धान्त - सभी भारतीय दर्शनों में संसार को दुःखमय माना गया है। योग दर्शन में भी दुःखवाद मिलता है। योग दर्शन में दुःख के चार हेतु है - (1) परिणाम (2) ताप (3) संस्कार (4) गुणवृत्ति विरोध। इन्द्रियों की अतृप्ति दुःख है।

15. परिणामवाद या परिवर्तनवाद - परिणामवाद में योग का सृष्टि सिद्धान्त पाया जाता है। प्रकृति परिवर्तनशील है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था प्राप्त करा परिणाम या परिवर्तन है। सत्व, रजस् और तमस् प्रकृति के गुण है।

16. स्फोटवाद का सिद्धान्त - स्फोट का तात्पर्य है अर्थ का बोध होना। वर्ण, ध्वनि एवं पद जो शब्द के प्रकार हैं इनसे अर्थ का प्रयन होता है।

योग दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य -

1. आत्म प्रशिक्षण एवं आत्म नियंत्रण का उद्देश्य - योग शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है आत्म प्रशिक्षण और आत्म नियंत्रण। प्रो. के. दामोदरन लिखते हैं कि योग दर्शन का लक्ष्य है "शारीरिक अभ्यास और आत्मिक अनुशासन। योगाभ्यास की आठ क्रियाओं में से एक नियम का सिद्धान्त है कि शारीरिक शुद्धता और मानसिक सन्तोष इत्यादि के साथ ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित किया जाये।

2. नैतिकता के विकास का उद्देश्य - योग दर्शन के अनुसार नैतिकता का विकास शिक्षा का दूसरा उद्देश्य है। अष्टांग योग में यम और नियम नैतिक विकास के साधन है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह या लोभ न करना ये यम हैं।

3. पूर्णता की प्राप्ति का उद्देश्य - योग दर्शन के सूत्रों व सिद्धान्तों को पढ़ने से, समझने व पालन करने से जीवन के दुःख क्लेश का अन्त होता है और मनुष्य की आत्मा को पूर्णता या कैवल्य पद की प्राप्ति होती है।

4. लोक कल्याण की भावना के विकास का उद्देश्य - डॉ. सम्पूर्णानन्द ने इस सूत्र की विवेचना करते हुए लिखा है कि व्यास भाष्य और भोजवृत्ति के अनुसार जो अर्थ है वह है ही "परन्तु मेरी समझ में इस सूत्र का एक और अर्थ हो सकता है।

5. अच्छे संस्कारों के निर्माण का उद्देश्य - "चित्त के दो कार्य हैं। एक पुरूषदि के लिए शब्दादि का भोग तथा दूसरा विवेक ख्याति की उत्पत्ति द्वारा मोक्ष का सम्पादन करना।

योग दर्शन में अध्यापक की भूमिका -

अध्यापक को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये अर्थात् जो योग के द्वारा समाधि की ऊँची भूमिका में पहुँचकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका है। अध्यापक या गुरु तो ऐसा होना चाहिये जो योगाभ्यास में रत् रो। वह साधक-विद्यार्थी को दूर तक ले जा सके तथा ज्ञान का द्वार खोल सके। अध्यापक योग के रहस्यों का ज्ञाता हो। ईश्वर की पराभक्ति अध्यापक में हो तभी वह विद्यार्थी को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। योग-परम्परा में गुरु को मानसरोवर स्थान दिया गया है। अध्यापक असीम गुण ज्ञान भाव से विद्यार्थी की सेवा का अधिकारी होता है।

योगदर्शन में विद्यार्थी का व्यक्तित्व-

विद्यार्थी योगी होता है, योगसाधक होता है और योग साधना में अन्त क्षण तक विभिन्न गुणों को धारण करने के लिये चेष्टारत रहता है, योग का अभ्यास करता है। विद्यार्थी शरीर, मन और क्रिया में सात्विक, सुसंस्कारयुक्त हो तभी वह योग का अधिकारी समझा जा सकता है। योगदर्शन में वृत्ति पाँच प्रकार की कही गई है - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निन्द्रा, स्मृति। प्रमाण प्रमा या ज्ञान का साधन है जो प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम रूप में पाया जाता है। विपर्यय प्रमाण का उल्टा है और मिथ्या ज्ञान है। विकल्प शब्दों के आधार को मानता है।

योग दर्शन के अनुसार पाठ्यचर्या -

शुद्ध एवं पतंजलि योग सूत्र संयमपूर्ण जीवन बिते से लेकर कैवल्य प्राप्ति तक व्यवस्था बताता है। शिक्षा जीवन है या जीवन के विभिन्न पक्षों के विकास की विशिष्ट प्रक्रिया है। ऐसी स्थिति में 'योगसूत्र' में जो संकेत मिलते हैं उनसे शिक्षा की पाठ्यचर्या भी ज्ञात होती है।

योग दर्शन के अनुसार शिक्षण विधि -

योग सूत्र का आरम्भ - अथ योगानुशासन् से होता है। अनुशासन का तात्पर्य शास्त्र और उपदेश दोनों होता है। अतः योगशास्त्र बताने में जो शिक्षा निहित होगी उसे प्रदान कराने की कुछ विधियाँ अवश्य होंगी। योग दर्शन के अनुसार हमें निम्नलिखित शिक्षण विधियाँ मिलती हैं -

(1) उपदेश विधि - इस विधि का शुरू से अन्त तक प्रयोग हुआ है। महर्षि पतंजलि ने जो कुछ कहा, बताया या समझाया वह सभी उपदेश हैं। अतएव उपदेश विधि का प्रयोग पाया जाता है।

योग दर्शन द्वारा दिए गए उपदेश को अनुशासन कहा गया है जो 'अथ योगानुशासनम्' जैसे प्रथम सूत्र में मिलता है। परन्त ध्यानपूर्वक देखने पर अनुशासन का अर्थ नियंत्रण रूप में मिलता है। जो 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' जैसे दूसरे सूत्र में ही प्रकट हो जाता है। चित् का सम्बन्ध मन, आत्मा, बुद्धि, इन्द्रियों सभी से होता है। इसलिये चित्त का तात्पर्य आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाशक्ति से होता है। "चित्त के व्यापार (क्रियाएँ) सम्भाव्य क्षमताएँ उत्पन्न करते हैं और वे अपनी ओर से अन्य सम्भावनाओं को उत्पन्न करती हैं और इस प्रकार यह संसार चक्र बराबर चलता रहता है एवं वृत्ति, संसार चक्रमनिशमावर्तते (योग भाष्य 1.5)। जब संसार चक्र लगातार चलता है तो निश्चय ही अनुशासन नियंत्रण होगा। योग शिक्षा में अनुशासन एक आवश्यक तत्व कहा जाता है। कथन भी है - 'योगेन चित्तस्य पदेन वाचां अनुशासनम्'।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि योग दर्शन की शिक्षा के क्षेत्र में अनेक उपयोगिता है अगर योग दर्शन का समुचित व्यावहारिक उपयोग किया जाए तो उसको शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा में योग, आसन और प्राणायाम की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए योग दर्शन के अध्ययन पर बल दिया जाना, चाहिए।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. शर्मा रामनाथ, (1999), भारतीय दर्शन के मूल तत्व, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. उपाध्याय बलदेव (1998), भारतीय दर्शन, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. नन्द सम्पूर्णा (1987), योग दर्शन, बाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. दामोदरन के. (1997) भारतीय चिन्तन परम्परा, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. मुनि ब्रह्मलीन (1999), पतंजलि दर्शनम्, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पाण्डेय राम शकल (1986), पाश्चात्य तथा भारतीय दर्शन, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
7. राधाकृष्णन एस. (1988), भारतीय दर्शन, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।